जागरण
और
श्रवण
स्वामी शैलेन्द्र सरवती

ओशो फ्रैगरैंस

की प्रस्तुति

जागरण और श्रवण

श्री रजनीश ध्यान मंदिर

कुमाशपुर–दीपालपुर रोड

जिला: सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91 7988229565

+91 7988969660

+91 7015800931

जागरण और श्रवण
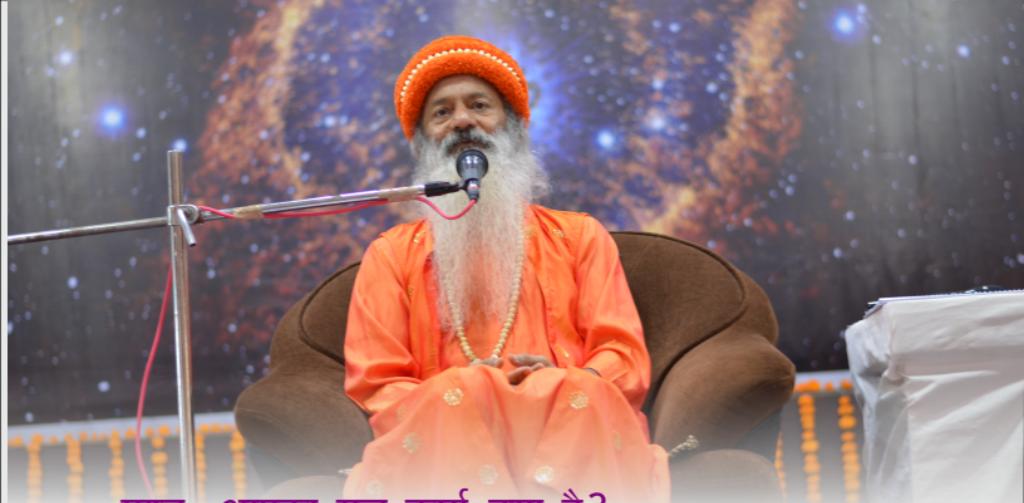
प्रश्न- आपका मूल कार्य क्या है?

कार्य न कहो तो ज्यादा अच्छा। कार्य बड़ा गम्भीर शब्द है। यह तो एक लीला है, एक खेल है। एक अद्‌भुत आनन्द मिला है हम उसे बाँट रहे हैं। इसे काम न कहो । काम बहुत गम्भीर शब्द हो जाता है, बस एक खेल है। कुछ मिला है, कुछ देखा है, वह बताना चाहते हैं। कुछ सुना है, उसे सुनाना चाहते हैं। 'यह जीवन ही प्रभु है', यह जाना है, यही जनाना चाहते हैं। पूछते हो मूल कार्य क्या है? वही जो सदा से सन्तों का रहा है, एक ही तो कार्य है जीवन में, छुपे परमात्मा की खोज, उसकी तरफ लोगों को अग्रसर करना; प्रभु के लिए
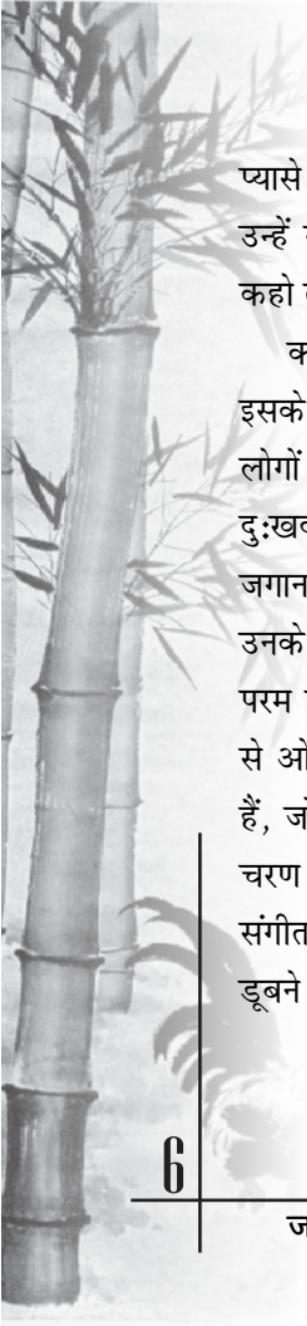
प्यासे करना और जो प्यासे हैं, जिनकी प्यास जाग गई है उन्हें सरोवर का रास्ता बताना। लेकिन इसे कार्य न ही कहो तो ज्यादा अच्छा है।

कार्य की भाषा में कहो तो मैं कहना चाहूँगा कि इसके तीन खण्ड हम कह सकते हैं, पहला खण्ड है लोगों को जगाना। लोग बहुत गहरी नींद में हैं और बहुत दु:खद स्वप्नों में खोए हुए हैं। उन्हें झकझोरना होगा, जगाना होगा। जो जाग गए, जिन्होंने आँखें खोल लीं उनके साथ फिर दूसरा कार्य शुरू होता है, जीवन के परम संगीत को सुनाना। यह जीवन एक अद्‌भुत संगीत से ओत-प्रोत है, लेकिन उस संगीत को वही जान पाते हैं, जो जाग गए नींद से, जिनकी बेहोशी टूटी। तीसरा चरण है जिन्होंने संगीत को जाना-पहचाना; अब उनको संगीत में इतनी गहराई तक डुबाना कि डूबते-डूबते डूबने वाला न बचे।

'हेरत-हेरत हे सखी रहा कबीर हिराई।
बुंद समानी समुंद में सो कत हेरि जाई।'

ओशो ने जिसके लिए यह शब्द 'ओशो' सम्बोधन चुना, उसका ठीक यही अर्थ है जो कबीर ने कहा- बूंद सागर में गिर गई। ओशो शब्द बना है 'ओशनिक एक्सपीरिऐंस' से, सागरीय अनुभव से। बूंद सागर में मिल गई और सागर ही हो गई। अब अलग से बूंद की कोई सत्ता न रही। विराट, निराकार और अरूप हो गई, वही अर्थ है ओशो का है।

आप पूछते हैं कि मूल कार्य क्या है?तीन चरणों में समझ लें; पहला चरण- जगाना, दूसरा- जीवन के परम संगीत को सुनाना और तीसरा- उसमें ऐसा डुबाना कि डूबने वाला शेष न बचे।

रामकृष्ण कहा करते थे कि एक नमक का पुतला सागर की थाह लेने के लिए सागर में उतरा, जैसे-जैसे भीतर डूबता गया- गहराइयों में पहुँचता गया, वैसे-वैसे घुलने लगा- पिघलने लगा। और अन्ततः नमक का पुतला बचा ही नहीं। वह सागर स्वरूप ही हो गया। सागर की गहराई तो उसने जानी, लेकिन सागर होकर ही
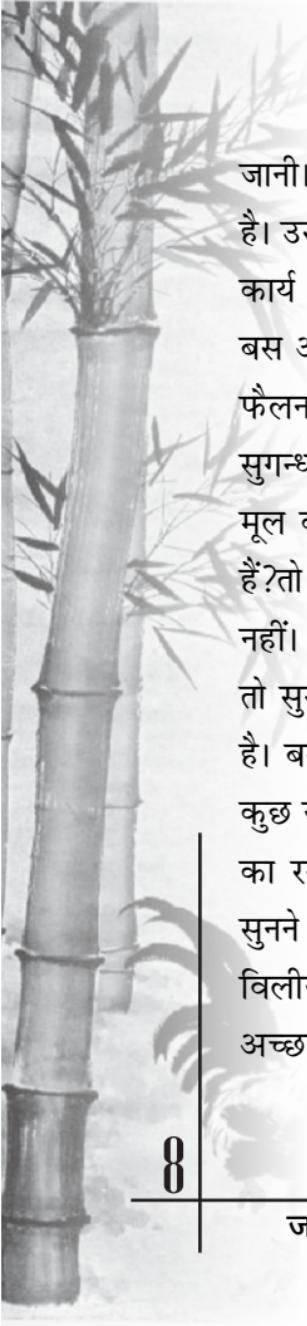
जानी। भीतर कुछ वैसा ही अद्‌भुत अनुभव घटित हुआ है। उसे बाँटना है, मित्रों तक खबर पहुँचानी है। अब इसे कार्य कहना चाहो तो कार्य कह लो। पर कार्य है नहीं। बस अपने आनन्द का फैलना है। आनन्द का स्वभाव है फैलना, बंटना। जैसे कोई फूल खिला और उसकी सुगन्ध बिखरती है। अब कोई पूछे फूल से कि आपका मूल कार्य क्या है?क्या आप सुगन्ध को फैलाना चाहते हैं?तो फूल कहेगा कि नहीं, ऐसा कभी मैंने सोचा तो नहीं। लेकिन यह एक सहज घटना है। फूल खिलता है तो सुगन्ध उड़ती है। फूल खिलता है तो सुवास फैलती है। बस यह एक स्वाभाविक सहज घटना है। वैसा ही कुछ यहाँ हो रहा है। दूर-दूर से मित्र आ रहे हैं, जागरण का रसास्वादन कर रहे हैं। जीवन के परम संगीत को सुनने में सक्षम हो रहे हैं और उसमें डूबते-डूबते अंततः विलीन हो रहे हैं। कार्य नहीं; लीला कहो तो ज्यादा अच्छा। बस यही कहना चाहता हूँ कि-

बहुत कुछ और भी है इस जहाँ में ए दोस्त,
यह जिन्दगी महज गम ही गम नहीं है।
तुम मानो या न मानो मगर मैं तो कहे जाऊँगा,
जो सुन रखा था हमने वो आलम नहीं है।
निगाहों से अपनी ख्यालों का धुआँ सरकाओ,
जीस्त की रोशनी शीतल है तम नहीं है।
बन्द पलकों में सजे सपने बड़े दर्दीले हैं पर,
आँख खोलो तो खुशियों का
खजाना भी कम नहीं है।
इन जाहिलों के जाल से जो बच सका वो शख्स,
पाता यहीं है मंजिल, चलता कदम नहीं है।
क्या ढूँढते जमाने में बदहवास फिर रहे हो,
रुक जाओ और यहीं, कोई तो गम नहीं है।
जो सुन रखा था हमने, वो आलम नहीं है
बहुत कुछ और भी है इस जहाँ में ए दोस्त,
यह जिन्दगी महज गम ही गम नहीं है।

जागरण और श्रवण
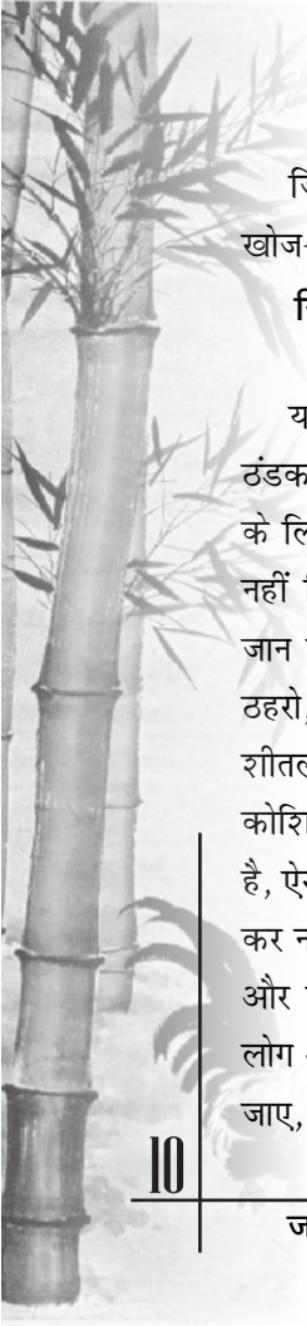
जिन्दगी परम आनन्द है लेकिन उसके लिए खोज-बीन करनी होगी, थोड़ा तलाशना होगा।

निगाहों से अपनी ख्यालों का धुआँ सरकाओ,
जीस्त की रोशनी शीतल है, तम नहीं है।

यह रोशनी ऐसी है जो जलाती नहीं है, शीतल है, ठंडक पहुँचाती है। लेकिन इस शीतल रोशनी को खोजने के लिए थोड़ा-सा जागना होगा। सोये-सोये वह रोशनी नहीं दिखाई देगी। मूर्च्छित आँखों से देखोगे तो अंधेरा जान पड़ेगा, लेकिन अंधेरा है नहीं। थोड़ा रुको, थोड़ा ठहरो, थोड़ा ख्यालों का धुआँ आँखों से सरकाओ, तो शीतल रोशनी के दर्शन हो सकते हैं। बस वही एक कोशिश चल रही है। चल रही है ऐसा कहना भी गलत है, ऐसा अपने आप अस्तित्वगत रूप से हो रहा है, कोई कर नहीं रहा है। जो रोशनी देखी है, वही चाहता हूँ कि और सब देख लें। क्योंकि बहुत लोग प्यासे हैं, बहुत लोग अंधेरे में हैं और टटोल रहे हैं। उन तक खबर पहुँच जाए, इस दिशा में प्रयास चल रहा है- हो रहा है अपने

आप, करने वाला कोई भी नहीं। जगाना है, सुनाना है और उस परम संगीत के संग एकात्म कराना है।

जागरण और श्रवण
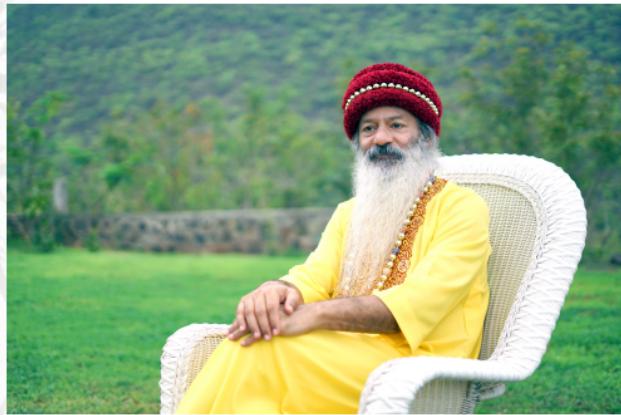
दूसरा प्रश्न: ओशो की जीवन्त धारा से क्या तात्पर्य है?

कोई भी बुद्ध पुरुष जब होते हैं और उनके विदा होने के बाद प्रायः ऐसा होता है कि उनके शब्दों को पकड़कर बहुत लोग बैठ जाते हैं। यही जिन्दगी का नियम है, आज तक ऐसा ही होता आया है। शायद भविष्य में भी ऐसा ही हो, कोई बहुत बड़े परिवर्तन की आशा और उम्मीद भी नहीं की जा सकती। शब्दों को पकड़ के, किताबों को पकड़ के लोग बैठ जाते हैं, और जो मूल बात थी, वह खो जाती है। कालान्तर में सिद्धान्त रह जाते हैं, शास्त्र रह जाते हैं, शब्द रह जाते हैं और

शब्दों के भीतर जो मौन का संगीत पिरोया था, वह चूक जाता है, वह खो जाता है। जीवन्त धारा का अर्थ है- जहाँ शब्दों पर, सिद्धान्तों पर किताबों पर कार्य नहीं हो रहा है, बल्कि उस बुद्ध पुरुष के द्वारा कही गई बातों का जो मूल तत्व है उसकी साधना हो रही है। कोई चर्चा और वाद-विवाद नहीं हो रहे हैं, कोई शब्दों की बाल की खाल नहीं उधेड़ी जा रही है, बल्कि उन शब्दों की आत्मा को खोजा जा रहा है। उन शब्दों में मौन छुपा हुआ है उस मौन को उघाड़ा जा रहा है।

ओशो की किताबों में शब्दों के बीच में जो खाली जगह है, उस जगह को पढ़ा जा रहा है और वही असली बात है। लेकिन ऐसा सदा-सदा से होता आया है, जब भी कोई जागृत पुरुष कुछ कहते हैं, कालान्तर में सिर्फ उनके शब्द हाथ में रह जाते हैं और मूल बात खो जाती है और मजे की बात यह है कि इन शब्दों का इस्तेमाल सिर्फ इसलिए किया गया था ताकि वह मौन संदेश तुम्हारे हृदय तक पहुँचाया जा सके। कुछ अद्‌भुत और
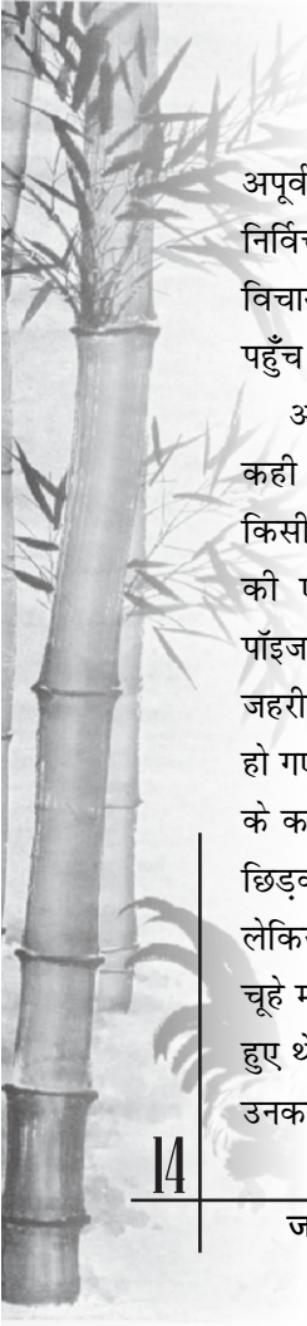
अपूर्व उनके भीतर जो हुआ था, मौन में, निशब्द में, निर्विचार में, उसे ही बताने के लिए शब्द का और विचारों का उपयोग किया था। ऊपर-ऊपर की खोल पहुँच जाती है, भीतर की असली बात छूट जाती है।

ओशो ने एक प्रवचन में एक बड़ी ही प्यारी कहानी कही है। कहानी नहीं एक सत्य घटना है। यूरोप के किसी देश में विषों का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों की एक प्रयोगशाला थी। जहाँ पर विषों के ऊपर, पॉइजन्स के ऊपर काम चलता था। वहाँ सारा शोध कार्य जहरीले पदार्थों पर था। उस प्रयोगशाला में कुछ चूहे पैदा हो गए और धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ने लगी। तो वहाँ के कर्मचारियों ने चूहों को मारने के लिए कुछ पॉइजन्स छिड़के, कुछ जहरीले पदार्थों का छिड़काव किया। लेकिन मजे की बात उन जहरीले पदार्थों को छिड़कने से चूहे मरे नहीं, क्योंकि वे चूहे जो उस प्रयोगशाला में पैदा हुए थे वे बचपन से ही जहर खाने के आदी थे। जहर ही उनका भोजन था। प्रयोगशाला में और दूसरे पदार्थ तो

वहाँ थे नहीं, वे जो विषैले पदार्थ थे, वे ही उनका आहार थे। तो जहर जब छिड़का गया तो वे और तन्दुरुस्त हो गए, उनको भोजन मिल गया। वे उसी के आदी हो गये थे। तो बड़ी मुश्किल हुई कि क्या किया जाय। विषैले से विषैले पदार्थ उन पर कोई प्रभाव न डाल सके। तब सोचा गया कि इनको पिंजड़ों में, चूहे पकड़ने के जो पिंजड़े आते हैं, उनमें पकड़ के यहाँ से बाहर फेंका जाय। जैसा कि परम्परा थी कि चूहे के पिंजड़े के अन्दर ब्रैड लटका दी जाती है, चूहा उससे आकर्षित होकर पिंजड़े के अन्दर जाता है और फंस जाता है। पिंजड़े उपयोग किये गए लेकिन असफल रहे। क्योंकि चूहे ब्रैड को अपना भोजन समझते ही नहीं थे। उन्हें पता ही नहीं था कि ब्रैड भी कोई खाने की चीज है। उन्होंने जिन्दगी में कभी ब्रैड खाई ही नहीं थी। वे कोई भी पिंजड़े के पास नहीं आए। तब फिर एक उपाय करना पड़ा, एक बड़ी सूझ-बूझ वाले वैज्ञानिक ने सुझाया कि इस ब्रैड के ऊपर जहर की पर्त लपेटो। वैसा
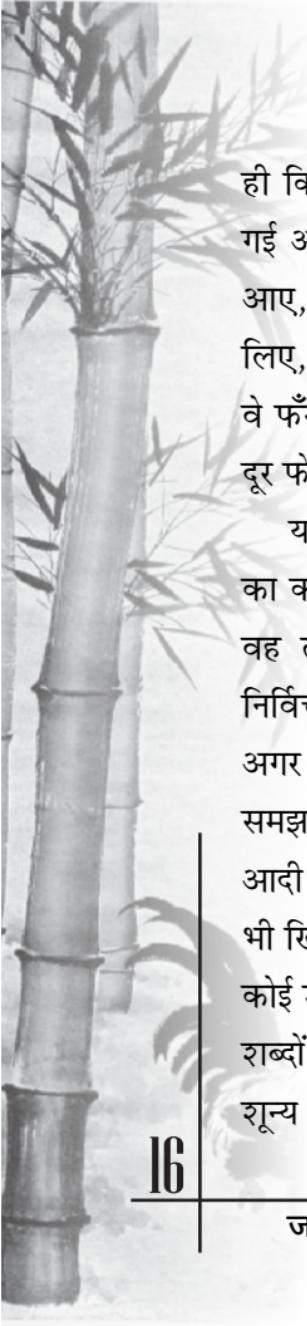
ही किया गया। ब्रैड के ऊपर जहर की मोटी पर्त चढ़ाई गई और उसे पिंजड़े के अन्दर लटकाया गया। तब चूहे आए, ब्रैड को खाने के लिए नहीं, जहर को खाने के लिए, अपने भोजन की तलाश में और पिंजड़े के अन्दर वे फँस गए और तब उन्हें वहाँ से ले जाकर बाहर कहीं दूर फेंका गया।

यह कहानी सुनाकर ओशो कहते हैं कि बुद्ध पुरुषों का कार्य भी करीब-करीब ऐसा ही है। जो उन्हें देना है वह तो उनके भीतर का मौन संगीत है, जो उन्होंने निर्विचार में जाना। लेकिन उसे संप्रेषित कैसे करें? वह अगर मौन ही बैठ जायें तो कोई भी उनकी बात नहीं समझ पायेगा। लोग शब्दों के, सिद्धान्तों के, विचारों के आदी हैं। जहर को ही अपना भोजन मानते हैं। उन्हें ब्रैड भी खिलानी हो तो जहर में लपेट के ही देनी पड़ेगी, और कोई उपाय नहीं है। उन्हें मौन भी सिखाना हो तो उसे भी शब्दों में लपेट कर, विचारों में बाँध कर देना पड़ेगा। शून्य भी उन्हें देना हो तो सिद्धान्तों में बाँध कर इस

उम्मीद के साथ कि शायद कोई तो समझ जायेगा। कोई तो उसे खोलेगा और भीतर की बात को पहचानेगा, जो असली बात थी।

गौतम बुद्ध ने महाकाश्यप को जो दिया था, वही गौतम बुद्ध सबको देना चाहते थे, लेकिन किन्हीं विरले लोगों को ही दे पाते हैं। हर बुद्ध पुरुष अपना मौन हमें देना चाहता है, लेकिन हम लेने को तैयार नहीं। हम तो केवल भाषा के आदी हैं, शब्दों के आदी हैं। उन्हें अपने मौन को भी प्रदूषित करके शब्दों में लपेट के देना पड़ता है। ये उनकी मजबूरी है, और कोई उपाय नहीं है।

कालान्तर में दो प्रकार की धाराएँ हर बुद्ध पुरुष के पीछे चलती हैं। पहली जो ऊपर के शब्दों को, विचारों को, सिद्धान्तों को, फिलॉसफी को, दर्शन शास्त्र को पकड़कर बैठ जायेंगे; उन्हें हम कह सकते हैं- मतवादी। और दूसरी जो, भीतर के असली तत्व को उखाड़ लेंगे, उन्हें हम कह सकते हैं- तत्ववादी। तो प्रत्येक बुद्ध पुरुष के पीछे दो प्रकार की धाराएँ चलती हैं। हजरत मोहम्मद
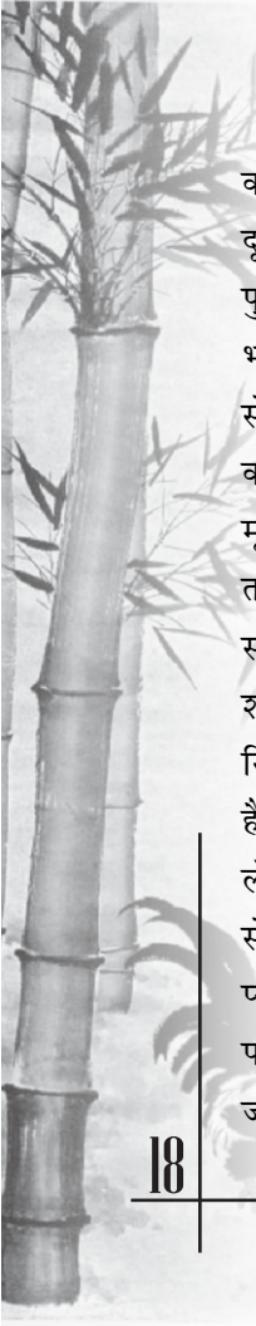
के पीछे एक मुसलमानों का सम्प्रदाय चल रहा है और दूसरी सूफियों की तात्विक धारा चल रही है। सभी बुद्ध पुरुषों के साथ यह घटना घटती है। ऐसा ही शायद भविष्य में भी होता रहेगा। क्योंकि लोग अपनी गलतियों से सीखते कहाँ हैं। यहाँ जो कार्य चल रहा है, वह ओशो की जीवन्त धारा अथवा तात्विक धारा, है। ओशो की जो मूल देशना है, जो समाधि के सूत्र उन्होंने दिये हैं, संबोधि तक पहुँचने का जो मार्ग उजागर किया है, उसकी साधना की जा रही है। कोई चिन्तन-मनन नहीं, कोई शब्दों की ऊहा-पोह नहीं। विचारों की, मतों की, सिद्धान्तों की, फिलॉसफिज की चर्चा में हम नहीं उलझे हैं। सीधी-सीधी मूल बात संप्रेषित की जा रही है। लेकिन मनुष्य का दुर्भाग्य बहुत कम लोग तात्विक धारा से परिचित हो पाते हैं या बहुत कम लोगों के जीवन में प्यास उत्पन्न हो पाती है कि वे तात्विक धारा तक पहुँच पायें। साधकों का बड़ा वर्ग केवल शब्दों में उलझकर रह जाता है। अब समय आ गया है कि लोगों को इस

सम्बन्ध में चेताया जाए, बताया जाए कि केवल शब्दों में मत उलझ जाना। केवल प्रवचन सुनके संतुष्ट मत हो जाना। केवल ध्यान की विधि करके प्रसन्न मत हो जाना कि हो गया काम। बहुत दूर जाना है, ध्यान की विधि शुरुआत है। ओशो के प्रवचन किसी ने सुने, यही शुरुआत है। लेकिन शुरुआत को ही समापन मत समझ लेना। बस इतनी-सी बात है और यह बात दूर-दूर तक फैलानी होगी। क्योंकि बहुत लोग ओशो को एक दार्शनिक के रूप में, एक लेखक के रूप में, एक विचारक, एक चिंतक के रूप में स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। वह कोशिश तोड़ी जानी चाहिए। ओशो की मूल बात उनका दर्शन नहीं, उनका चिन्तन नहीं, जीवन की परिधि पर विभिन्न आयामों के सम्बन्ध में कहे गए उनके क्रान्तिकारी विचार नहीं, बल्कि उनकी मूल देशना अध्यात्म की शिक्षा है। उस शिक्षा को छोड़कर बाकी शेष बातों पर जिसने ध्यान दिया वह ओशो की मूल बातों से चूक जायेगा। तो जब हम कहते
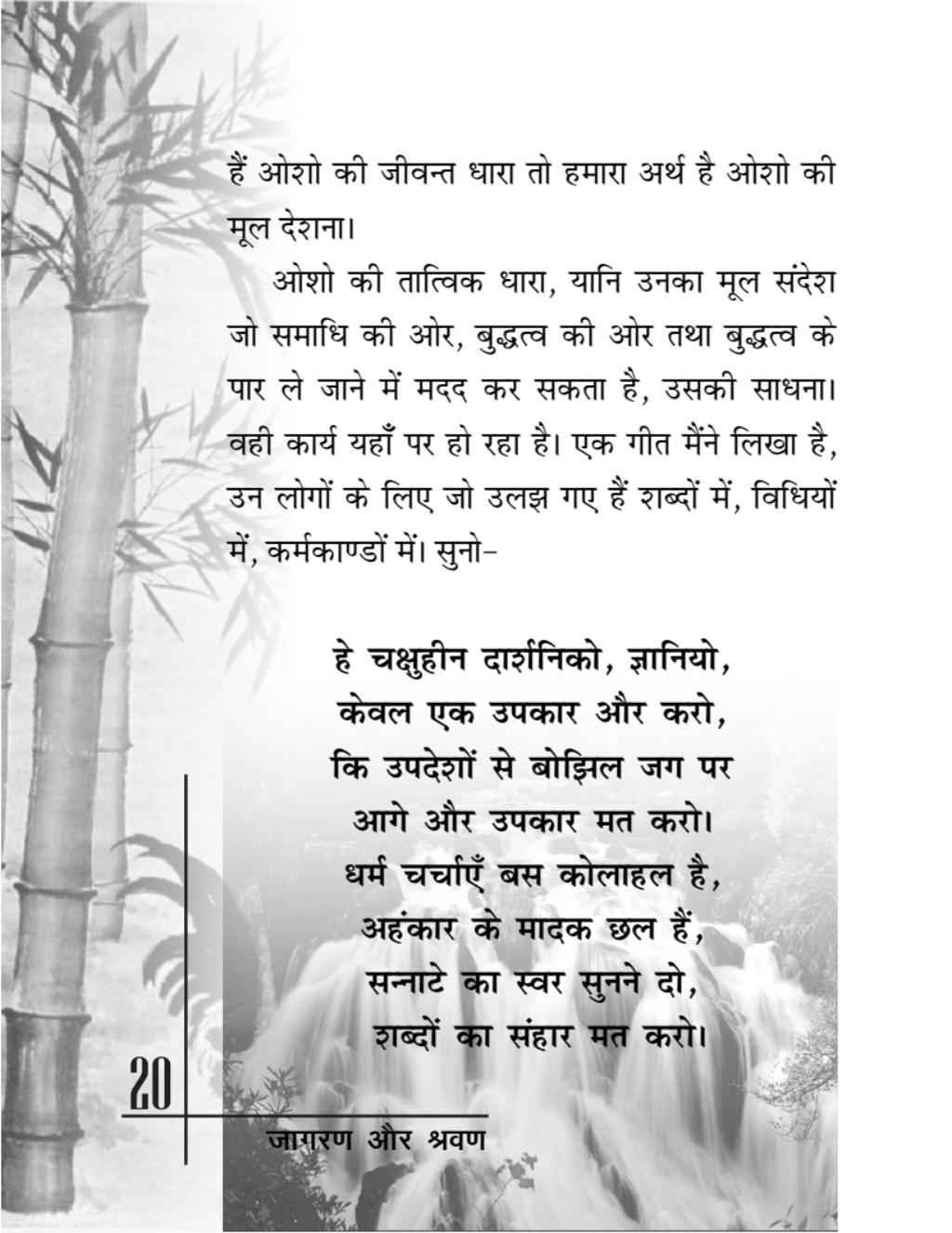
हैं ओशो की जीवन्त धारा तो हमारा अर्थ है ओशो की मूल देशना।

ओशो की तात्विक धारा, यानि उनका मूल संदेश जो समाधि की ओर, बुद्धत्व की ओर तथा बुद्धत्व के पार ले जाने में मदद कर सकता है, उसकी साधना। वही कार्य यहाँ पर हो रहा है। एक गीत मैंने लिखा है, उन लोगों के लिए जो उलझ गए हैं शब्दों में, विधियों में, कर्मकाण्डों में। सुनो–

हे चक्षुहीन दार्शनिको, ज्ञानियो,
केवल एक उपकार और करो,
कि उपदेशों से बोझिल जग पर
आगे और उपकार मत करो।
धर्म चर्चाएँ बस कोलाहल है,
अहंकार के मादक छल हैं,
सन्नाटे का स्वर सुनने दो,
शब्दों का संहार मत करो।

वादों से प्रतिवाद जन्मते,
मतभेदों से विवाद पनपते,
सत्य सिद्धि की साधना सीखो,
सिद्धान्तों का व्यापार मत करो।
काम-क्रोध-मद-लोभ-ईर्ष्या,
लड़कर कोई न इनसे जीता,
मूल बीमारी की दवा खोजो,
लक्षणों का उपचार मत करो।
मान्यताओं और धारणाओं से,
पीड़ित है धरती पहले से,
निर्विचार मौन में डूबो,
शास्त्रों पर पुनर्विचार मत करो।
विश्वासों व श्रद्धाओं की,
भीड़ लगी इन विपदाओं की,
शून्य हृदय को रह जाने दो,
शिक्षा व संस्कार मत भरो।
बहुत हुईं आनन्द की बातें,

किन्तु दुःख में बीतीं दिन-रातें,
वर्तमान क्षण का सुख भोगो,
गत-आगत का ध्यान न धरो।
सुलझाने की कोशिश जितनी,
बुद्धि उलझती ही गई उतनी,
निर्मल कुंवारी चेतना के संग,
तर्कों से बलात्कार मत करो।
पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ,
नीति की खोखली बकवास मत करो,
प्रेम की प्यासी दुनिया का,
दया दिखा उपहास मत करो।
जो कभी आपके काम न आया,
उस ज्ञान का उपहार मत दो,
हो सके तो प्यार दो, प्यार लो,
तर्कों की बौछार मत करो।
पूजा-प्रार्थना-व्रत अनुशासन,

छोड़ो नियम-संयम-योगासन,
सजग-सरल-सहज-शिशुवत बनो,
पाखण्डी व्यवहार मत करो।
हे चक्षुहीन दार्शनिको- ज्ञानियो,
केवल एक उपकार और करो,
उपदेशों से बोझिल जग पर,
आगे और उपकार मत करो।

जिनकी खुद आँखें नहीं हैं, वे अगर दूसरों को रास्ता दिखायेंगे तो वही होगा जिसकी तरफ कबीर ने इशारा किया है-

अन्धा-अन्धा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत।

ओशो की जीवन्त धारा से तात्पर्य है- आँख खोलकर जीना सीखो, वह जानो जो स्वयं ओशो ने जाना। उस मूल तत्व को, परमात्मा को पहचानो, जिसे ओशो ने पहचाना उसमें डूबो और ऐसे डूबो कि वही हो जाओ। ओशो ने अपनी एक किताब का नाम रखा है- 'साहिब मिल साहिब भये।' परमात्मा से जो मिल जाता

है, जो उसमें डूब जाता है, वह परमात्मा ही हो जाता है। इस दिशा में जो काम होगा, वह ओशो की तात्विक धारा कहलायेगी। फिलहाल यह काम ओशो आचार्य संघ द्वारा हो रहा है। हम आशा और उम्मीद करते हैं कि ओशो के सभी प्रेमी, ओशो के सभी साधक, ओशो के सभी चाहने वाले शिष्य, ओशो की तत्व-धारा से जुड़ें, स्वयं खोजें, ढूँढ़ें, परमात्मा से कम पर संतुष्ट न हों। उससे कम पर जो रुक गया, वह मंजिल से पहले किसी मुकाम पर ठहर गया।

तीसरा प्रश्न - आप किस तरह के लोगों पर काम करना चाहते हैं?

जो लोग सीखने को तैयार हैं। बस एक ही शर्त है जो व्यक्ति भी सीखने के लिए राजी है, हम उसके साथ मेहनत करने के लिए तैयार हैं। क्योंकि हमारी तरफ से यह मेहनत नहीं, हमारा आनन्द है। हमारा अहोभाव है। परम प्यारे सद्गुरु ओशो से हमें जो मिला वह हम सभी प्यासों तक पहुँचाना चाहते हैं। अतः जो प्यासे हैं, जो तड़प रहे हैं, जो खोज में हैं, उनका स्वागत है। हाँ, उन लोगों से हम बचना चाहते हैं, जो ज्ञान से ठसाठस भरे हैं, विचारों से लबालब हैं। जो समझते हैं कि उन्होंने
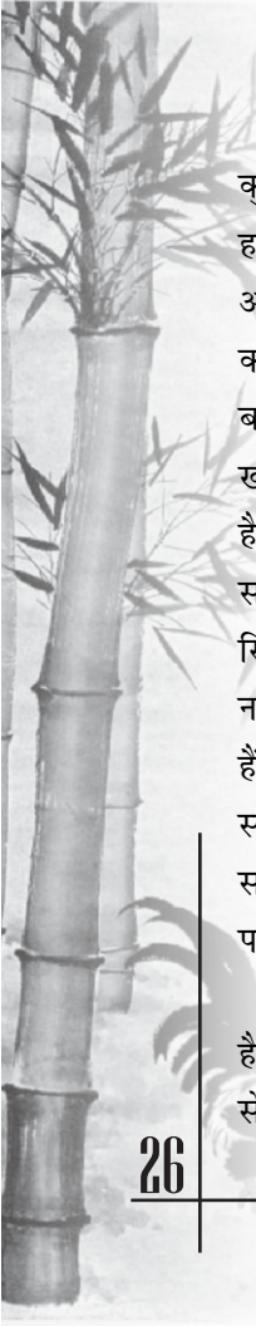
कुछ पा लिया है। उनसे हम विनम्र विनती करते हैं कि हमारे पास न आयें। जब आपने पा ही लिया है तो आनन्द करें। फिर और कष्ट करने की जरूरत नहीं है। कभी-कभार में कुछ ज्ञानी लोग यहाँ भी आ जाते हैं। बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती है। पहले से ही उनकी खोपड़ी भरी हुई है विचारों से और उन्हें भ्रम पैदा हो गया है कि वे जानते हैं। अब उन्हें कुछ और नहीं बताया जा सकता। वे कुछ भी सीखने को तैयार नहीं हैं, उल्टा सिखाने के लिए आते हैं। उन लोगों में हमारा कोई रस नहीं है। जो सीखने के लिए राजी हैं, जो झुकने को राजी हैं, जो अपना पात्र फैलाने के लिए तैयार हैं, उनका स्वागत है। वह परम सम्पदा, उनके पात्र में उड़ेली जा सकेगी। लेकिन खाली जगह तो चाहिए। अगर पात्र पहले से ही भरा है, तो आखिर पात्र है ही नहीं।

पात्रता का मतलब ही होता है- खालीपन। जो रिक्त है, खाली है उसमें कुछ भरा जा सकता है। जो विचारों से भरे हैं, उनके ऊपर मौन की बरसात होती रहेगी और

वे खाली के खाली रह जायेंगे। बादल बरसते हैं न, लेकिन पहाड़ खाली रह जाते हैं, तालाब भर जाते हैं। क्योंकि तालाब में पात्रता है, वह पहले से खाली है, इसलिए भर जाता है। और पहाड़ पहले से ही भरे हुए हैं, इसलिए वर्षा के जल से रिक्त रह जाते हैं। आप पूछते हैं कि किस प्रकार के लोगों पर आप काम करना चाहते हैं। उन लोगों पर जो सीखने के लिए राजी हैं। बस हमारी तरफ से एक ही शर्त है, कोई और शर्त नहीं। जो सीखने को राजी हैं, जो अपनी धारणाएँ, अपने अंध विश्वास, अपनी मतान्धता, कट्टरवादिता, अपनी फिलॉसफी की असफलता देख चुका है, और जो प्यासा है पानी के लिए। जो 'एच टू ओ' के फार्मूला को जानना नहीं चाहता और जो पानी की चर्चा नहीं करना चाहता, जो पानी ही पीना चाहता है, जो बहुत चर्चाएँ कर चुका, जो बहुत विचार, चिन्तन-मनन कर चुका और जो जानता है कि पानी के सम्बन्ध में कितने ही शास्त्र पढ़ो, प्यास नहीं बुझती, उसका स्वागत है। उसके साथ काम करने

में, अपना आनन्द बाँटने में हमारा आनन्द और बढ़ता है। कभी–कभी कोई ज्ञानी जन आ जाते हैं। एक–दो दिन में पता चल जाता है। उनसे हम क्षमा मांग लेते हैं और बीच में ही विदा कर देते हैं कि आपका यहाँ कोई काम नहीं, आप कहीं और जायें। आप तो स्वयं ही ज्ञान से भरे हैं, कृपया आप अपना ज्ञान कहीं अन्यत्र बाँटें। यहाँ किसलिए आए हैं?यहाँ आपका कोई काम नहीं।

चौथा प्रश्न - विश्व की भयावह स्थिति में सुधार के लिए क्या कुछ किया जा सकता है?

निश्चित ही किया जा सकता है। वही काम जो हम यहाँ कर रहे हैं, ज्यादा से ज्यादा लोग ध्यान में डूबें, समाधि में डूबें, परमात्मा में डूबें, जागें, गहन जागरण को घटित होने दें, अहंकार को विदा होने दें। यह जो विश्व की भयावह स्थिति निर्मित हुई है, यह अहंकार के कारण हुई है। इसकी मूल बीमारी है अहंकार। कुछ दिनों पहले एक मित्र ने मुझसे पूछा था कि आतंकवाद के खिलाफ क्या किया जा सकता है?मैंने कहा कि सबसे पहले तो आतंकवादी को पहचानो, आतंकवादी कौन है?
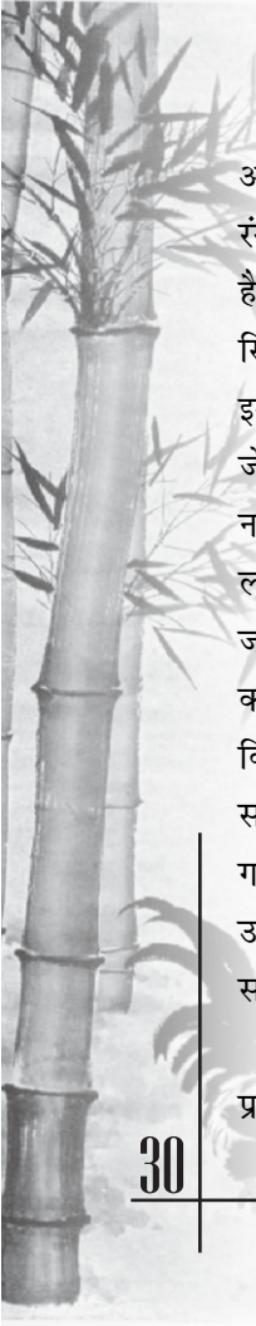
अहंकार आतंकवादी है। उसके बहुत रूप हैं, बहुत रंग-ढंग हैं। लेकिन मूल बीमारी हमेशा जानना, अहंकार है। वह आतंकवादी है और विश्व की जो यह भयावह स्थिति देखते हो वह अहंकारियों की वजह से है। अगर इसको मिटाना है तो किसी आतंकवादी को मारने से, जेल में डालने से बात नहीं बनेगी। मूल बीमारी को ही नष्ट करना होगा, उस अहंकार के खिलाफ लड़ाई लड़नी होगी और वह लड़ाई केवल एक तरीके से लड़ी जा सकती है, हम अपने भीतर उस आतंकवादी अहंकार को विसर्जित कर दें। यह कार्य केवल स्वयं के साथ किया जा सकता है, दूसरों के साथ नहीं। अगर दूसरों के साथ करने चले तो तुम फिर अहंकार की चपेट में आ गए। तुम्हारा वह कृत्य भी अहंकार से ही उपजेगा और उससे कोई समाधान नहीं होने वाला। समाधान तो समाधि में मिलेगा।

डूबो समाधि में और फैलाओ समाधि की हवा। प्रत्यक्ष देखने में साफ-साफ समझ में नहीं आयेगा कि

समाधि का और विश्व की भयावह स्थिति का क्या सम्बन्ध हो सकता है। इससे कैसे समस्या हल होगी?लेकिन मैं कहता हूँ तुमसे कि सिर्फ इससे ही समस्या हल हो सकती है। अगर बहुत लोग ध्यान में, समाधि में डूब जायें; बहुत लोग परमात्मा के रस में मगन हो जायें, नाचने लगें, झूमने लगें मस्ती में। 'पीबत राम रस, लगी खुमारी' मस्त हो जायें, तो एक दूसरे प्रकार की आब-हवा सारी पृथ्वी पर फैलाई जा सकती है। बहुत आसानी से यह सम्भव है। आतंकवाद के खिलाफ सीधी लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती, परोक्ष लड़ाई ही होगी। सीधी लड़ाई जो भी लड़ने जायेगा, वह स्वयं ही अहंकार के वशीभूत होकर जायेगा और उसके द्वारा किया गया प्रत्येक कृत्य विश्व की स्थिति को और भयावह कर देगा। आप पूछते हैं कि विश्व की भयावह स्थिति में सुधार के लिए क्या कुछ किया जा सकता है?आत्म क्रान्ति से गुजरा जा सकता है। अगर तुम समाज को सुधारने गए, विश्व को सुधारने गए तो बात
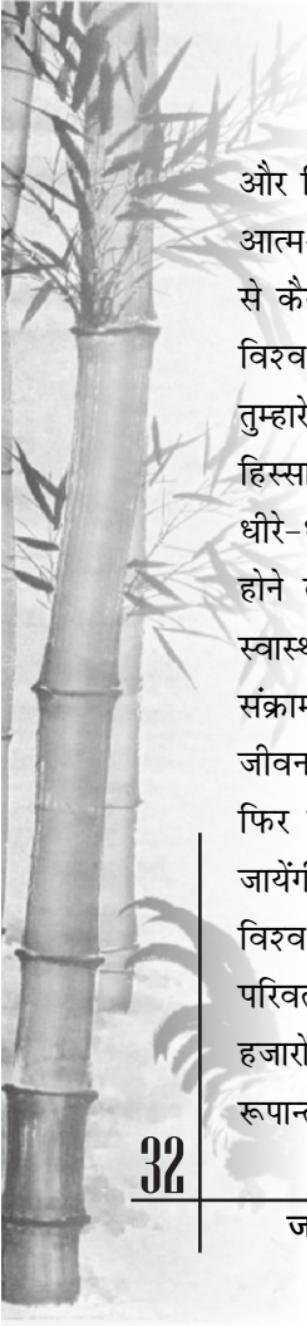
और बिगड़ जायेगी। वह दिशा ही गलत है। तुम सोचो आत्म-क्रान्ति की, आत्म-रूपान्तरण की। तुम्हारे भीतर से कैसे अहंकार पूरी तरह से मिट जाये। कम से कम विश्व के छः अरब लोगों में से तुम एक व्यक्ति हो, तुम्हारे भीतर से अहंकार मिटा। चलो मानवता का एक हिस्सा तो अहंकार से मुक्त हुआ। शुरूआत हो गई, धीरे-धीरे तरंगें और आस-पास फैलने लगेंगी। संक्रमण होने लगेगा। केवल बीमारी ही संक्रामक नहीं होती, स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है। समाधि भी, बुद्धत्व भी संक्रामक होता है। तुम डूबो परमात्मा में; तुम अपने जीवन की समस्याओं का समाधान खोज लो समाधि में, फिर तुमसे बहुत शांति की तरंग पैदा होनी शुरू हो जायेंगी और फिर आशा की जा सकती है कि शायद विश्व की स्थिति में कुछ परिवर्तन आए। लेकिन वह परिवर्तन सीधे-सीधे नहीं लाया जा सकता। हजारों-हजारों साल से तो कोशिश चल रही है जगत को रूपान्तरित करने की। कहाँ सफल हो पाई?

प्रथम विश्व युद्ध हुआ सारी दुनिया में बातचीत होने लगी एवं चिन्तन-मनन होने लगा कि कैसे शान्ति स्थापित हो। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ बन गई, विश्व में शान्ति लाने के लिए और 15-20 साल भी नहीं गुजर पाए कि दूसरा विश्व युद्ध शुरू हो गया। फिर जोरदार कोशिशें शुरू हो गईं। विश्व शान्ति का अभियान सब तरफ से चल पड़ा। लेकिन स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही चली गई। यह विश्व सदा से ही ऐसी स्थिति में रहा है। हमें ऐसा लगता है कि आज कुछ बात बिगड़ गई है। नहीं, ऐसी बात नहीं है। यह विश्व सदा से ही इस संकट की स्थिति में रहा है। बीच-बीच में कुछ अन्तराल आते हैं, अन्तराल सिर्फ लड़ाई की तैयारी के काल होते हैं। शान्ति का काल मनुष्य जाति ने कभी जाना ही नहीं। या तो अशान्ति का काल या फिर अशान्ति कि तैयारी का काल। या तो हम युद्ध करते हैं या युद्ध की तैयारी करते हैं। युद्ध में बहुत जन-धन की हानि हो जाती है। बहुत नुकसान हो जाता है। दूसरा युद्ध
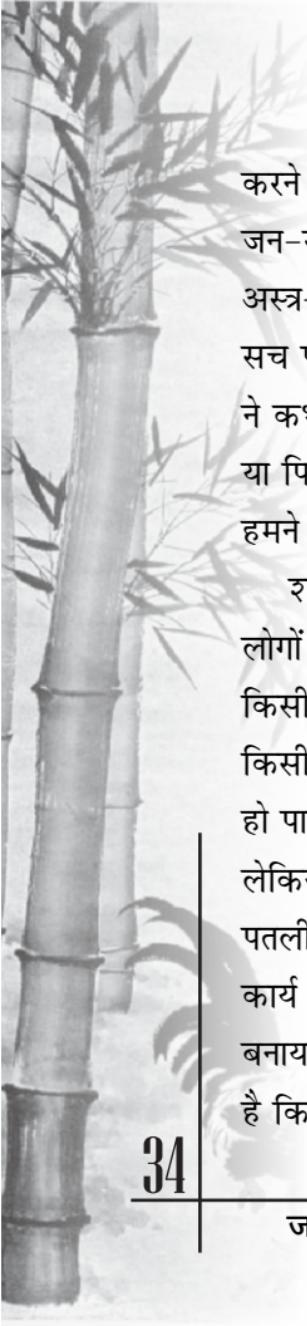
करने के लिए थोड़ा समय चाहिए। फिर थोड़ी जन-संख्या बढ़ जाये, फिर थोड़े साधन, फिर थोड़े अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे कर लें, थोड़ा समय तो लगेगा। तो सच पूछो तो शान्ति काल जैसी कोई चीज मनुष्य जाति ने कभी जानी ही नहीं। या तो अशान्ति, युद्ध का काल, या फिर युद्ध की तैयारी का काल, दो ही तरह के समय हमने जाने हैं।

शान्ति अभी तक केवल व्यक्तिगत रूप से कुछ लोगों ने जानी है, किसी बुद्ध ने, किसी महावीर ने, किसी पतंजलि ने, किसी गोरखनाथ ने, किसी मीरा ने, किसी नानक ने। कुछ लोग शान्त हुए हैं। समाज शान्त हो पाए, ऐसी स्थिति तो समाज में कभी नहीं बन सकी। लेकिन भविष्य में बन सकती है। आशा की एक पतली-सी किरण दिखाई देती है। ओशो ने जो विराट कार्य किया है, ध्यान के आन्दोलन को विश्वव्यापी बनाया है, सिर्फ इससे एक आशा कि किरण नजर आती है कि शायद ओशो के लोग, ओशो को प्रेम करने वाले

ध्यान की गहराइयों में डूबते-डूबते समाधि तक पहुँच जायें। समाधि की गहराइयों में डूबते-डूबते परमात्मा में खो जायें। उनका अहंकार पूरी तरह समाप्त हो जाये। बूंद मिट जाये और सागर ही हो जाये। शान्ति का एक सागर महाशून्य घट जाये।

ओशो ने कहा है कि अगर 200 से ज्यादा लोग इस धरती पर बुद्धत्व को उपलब्ध हो जायें तो विश्व की स्थिति बदल सकती है। तो अतीत में तो ऐसा कभी नहीं हुआ, लेकिन भविष्य में एक आशा की किरण है। ओशो के संन्यासियों पर एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी है क्योंकि केवल उन्हीं से उम्मीद की जा सकती है। और शेष लोग तो इतनी गहरी नींद में सोए हैं कि उनके कान पर तो जूँ भी नहीं रेंगेगी। उन तक तो कोई बात पहुँचाई नहीं जा सकती। सिर्फ ओशो के शिष्यों से उम्मीद है, वे ही थोड़े से जागे हुए हैं। और जो व्यक्ति जागा हुआ होता है, उसी के कधों पर जिम्मेवारी होती है। जो लोग सोए हैं, नींद में कुछ कर रहे हैं, बेहोशी में मूर्च्छित व्यवहार कर रहे हैं
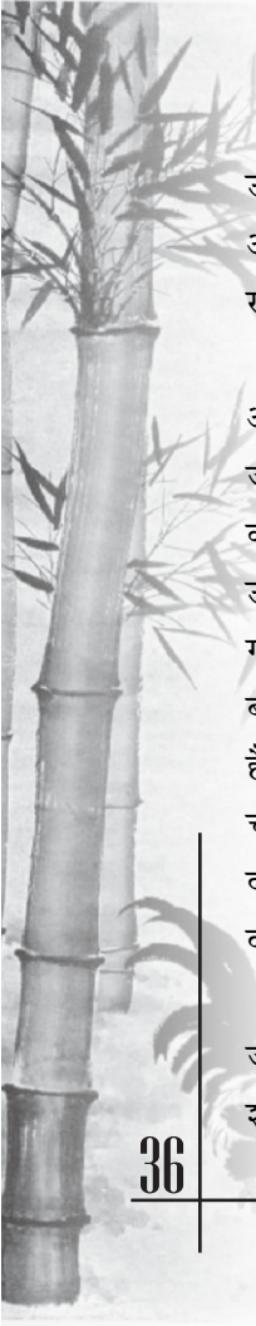
उनकी तो क्या जिम्मेवारी कहें। वे तो एक नशे में हैं। अहंकार का नशा चढ़ा हुआ है। वे क्या कर रहे हैं, उन्हें खुद नहीं पता।

पूरा जगत एक जागतिक आत्मघात की दिशा में आगे बढ़ रहा है, एक ग्लोबल सोसाइड। कुछ थोड़े से जागे हुए लोग जो ओशो से जुड़े और जिन्होंने जागरण की साधना शुरू की है, केवल उन्हीं से थोड़ी-सी उम्मीद है। और मुझे लगता है कि ओशो जो कार्य करके गए हैं, जो बीज बोकर गए हैं, अब समय आ गया है, वे बीज अंकुरित हो चुके हैं। कुछ पौधे के रूप में आ गए हैं। कुछ में कलियाँ खिल गई हैं। और कुछ कलियाँ तो चटक भी गई हैं। बुद्धत्व के फूल खिल गए हैं। सहस्त्र दल कमल खिल गए हैं। ओशो ने जो मेहनत की है, वह व्यर्थ नहीं जायेगी।।

यह सन् 2001, नई सदी की शुरुआत है, ओशो जगत में अध्यात्म के जगत में फूलों के खिलने की शुरुआत है। ओशो की बगिया में बसन्त आ गया। ओशो

ने जो मेहनत की थी, जो पानी सींचा था, जो खाद डाला था, जो बागुड़ लगाई थी इस बगीचे में, अब बसन्त आ गया। अब फूलों के खिलने का मौसम आ गया। समय तो लगता है और जितने विराट वृक्ष हों और फूल खिलने हों, जितनी महत सुवास उड़नी हो, उतना ही ज्यादा समय लगता है। ये कोई मौसमी फूल नहीं हैं कि आज बोये, 4 हफ्तों में पौधे आ गये और 6 हफ्तों में फूल खिल गए। 6 हफ्ते में जो फूल खिल जायेंगे, याद रखना वे तो महीने-दो महीने में सब विदा भी हो जायेंगे। अध्यात्म का वृक्ष तो विराट वट वृक्ष के समान है जो हजारों वर्ष जियेगा। हजारों ही क्यों, यह तो सनातन वृक्ष है। अंकुर आने में भी वक्त लगता है। ओशो ने जो मेहनत की है, जो '**क्रान्ति बीज**' हमारे हृदय की भूमि में बोए हैं, उनके खिलने का अब समय आ गया। क्रान्ति बीज किताब का नया संस्करण जब निकल रहा था, ओशो के शरीर छोड़ने के करीब 3 माह पूर्व तब ओशो ने उस किताब के शीर्षक के नीचे एक उप-शीर्षक
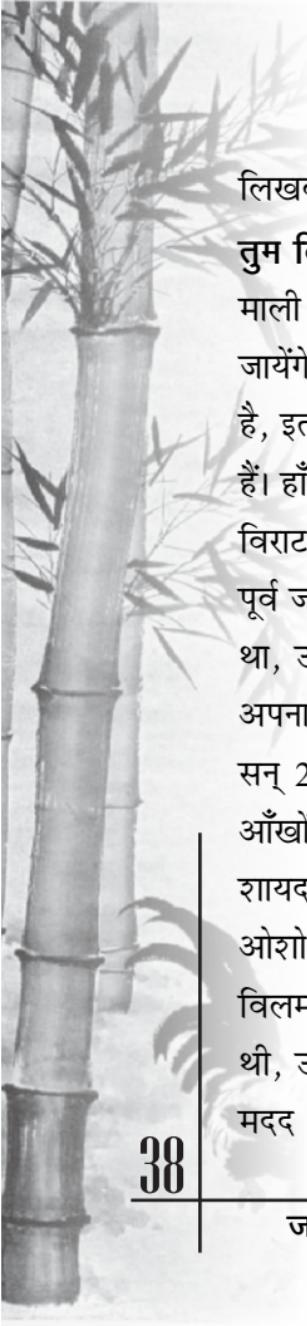
लिखवाया था– **क्रान्ति बीज। मैं तो बो चला, देखना तुम कि बीज सिर्फ बीज ही न रह जायें।** ओशो जैसा माली जिन बीजों को बोयेगा, क्या वे बीज बीज रह जायेंगे?कतई नहीं। ओशो ने इतना प्रेम का जल सींचा है, इतनी प्रज्ञा की खाद डाली है ये बीज तो पनपने ही हैं। हाँ, एक बात जरूर है ओशो के देह में रहते हुए यह विराट घटना न घट सकी। क्योंकि ओशो को समय से पूर्व जाना पड़ा। अमरीकी सरकार ने जो जहर उन्हें दिया था, उस कारण से कम से कम 12 साल पहले उन्हें अपना शरीर त्यागना पड़ा। मेरा अनुमान है कि ओशो सन् 2002 तक जीते। उन्होंने जो बीज बोये थे अपनी आँखों के सामने वे फूल खिलते भी देखते और तब शायद यह प्रक्रिया बहुत तीव्र गति से होती। लेकिन ओशो के असमय विदा हो जाने से इस प्रक्रिया में थोड़ा विलम्ब तो हुआ। वह जितनी तीव्र गति से हो सकती थी, उतनी तीव्र गति से न हो पाई। लेकिन ओशो की मदद सूक्ष्म रूप में आज भी मौजूद है। उनकी विदेही

उपस्थिति आज भी कार्य कर रही है। ये जो बुद्धत्व के फूल खिले हैं, यह मत सोचना कि तुम्हारी साधना से खिल गए हैं या हमारे मार्गदर्शन से खिल गए हैं। ये तो सब गौण ऊपरी-ऊपरी बातें हैं। बसन्त आया है, फूल खिलने ही थे और उस समय जो हवा चली तो तुम कहोगे कि इस हवा को श्रेय जाता है कि इस हवा ने कली को चटका दिया, फूल बना दिया। नहीं, यह तो संयोग की बात है। यह हवा न होती तो कोई और हवा चलती; कोई दूसरा झोंका होता। ये फूल खिलने ही थे। समय पक गया था। ठीक वैसी ही घटना घट रही है। और मुझे पूरी-पूरी आशा है कि आने वाले 10 साल के भीतर-भीतर विश्व की यह भयावह स्थिति पलट जायेगी। लेकिन यह किसी राजनीति से नहीं, किसी आन्दोलन से नहीं, यह कोई शान्ति के नारे लगाने से नहीं, विश्व शान्ति का झंडा उठाने से नहीं, यह समाधान होगा समाधि में बहुत लोगों के डूबने से। अगर तुम्हें कुछ करने जैसा लगता है तो बस एक ही काम करो, शीघ्र
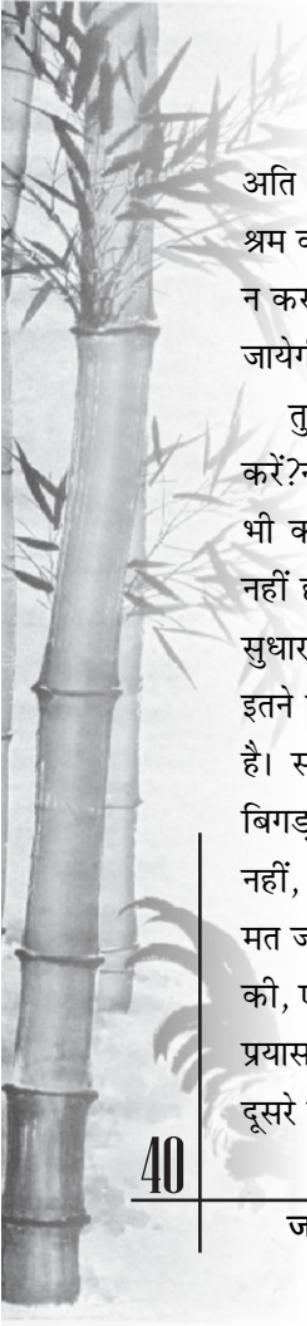
अति शीघ्र समाधि की गहराइयों में डूबो। अपने ऊपर श्रम करो। विश्‍व बहुत बड़ा है, हम उसके साथ कुछ भी न कर सकेंगे और जो भी किया जायेगा वह राजनीति हो जायेगी।

तुम पूछते हो उसको सुधारने के लिए क्या करें?नहीं; मैं नहीं कहता कि सुधारने के लिए तुम कुछ भी करो। आज तक तो सुधारने का कोई काम सफल नहीं हो पाया है। उल्टा ही होता है। जो लोग समाज को सुधारने के लिए निकलते हैं, थोड़े दिनों के बाद वे खुद इतने बिगड़ जाते हैं कि समाज को उन्हें सुधारना पड़ता है। सभी समाज सुधारक इतने बिगड़ जाते हैं, इतने बिगड़ जाते हैं कि उन्हें सुधारने की जरूरत पड़ जाती है। नहीं, वह गोरखधंधा तो बहुत हो चुका, उस दिशा में मत जाना। जीवन की दो दिशाएँ हो सकती हैं- एक धर्म की, एक राजनीति की। राजनीति है दूसरे को बदलने का प्रयास और धर्म है आत्म-रूपान्तरण की कला। तुमने दूसरे को बदलने की कोशिश की तो जाने-अनजाने तुम

राजनीति में उलझ जाओगे। मैं नहीं कहता हूँ कि सभी समाज सुधारक गलत इरादे से समाज सुधारने जाते हैं। उनके इरादे नेक ही होते हैं, लेकिन नेक इरादों से क्या होता है?अंग्रेजी में कहावत है कि– स्वर्ग का रास्ता शुभेच्छाओं से पटा पड़ा है। अकेली शुभेच्छा से क्या होगा?समझ भी तो चाहिए, समाधान भी तो चाहिए। कोई कितना ही चाहे कि समस्याओं को सुलझा दूँ, उसके नेक इरादों से क्या होगा?उसकी मंगल कामनाएँ, शुभकामनाएँ काम न आयेंगी। वह जिस रास्ते पर चला है वहाँ सिर्फ उलझाव हैं, टक्कर है, संघर्ष है और अन्ततः तुम जिससे लड़ोगे, वैसे ही तुम हो जाओगे। अपना शत्रु सोच–समझकर चुनना। क्योंकि धीरे–धीरे कालान्तर में तुम शत्रुओं जैसे ही हो जाओगे। अथवा, अगर तुम जीते तो इसका मतलब हुआ कि तुम शत्रु से भी ज्यादा खराब हो गए। नहीं तो जीत नहीं सकते थे। तुम शत्रु से भी बदतर स्थिति में पहुँच गए। उससे भी ज्यादा खतरनाक तुम हो गए।
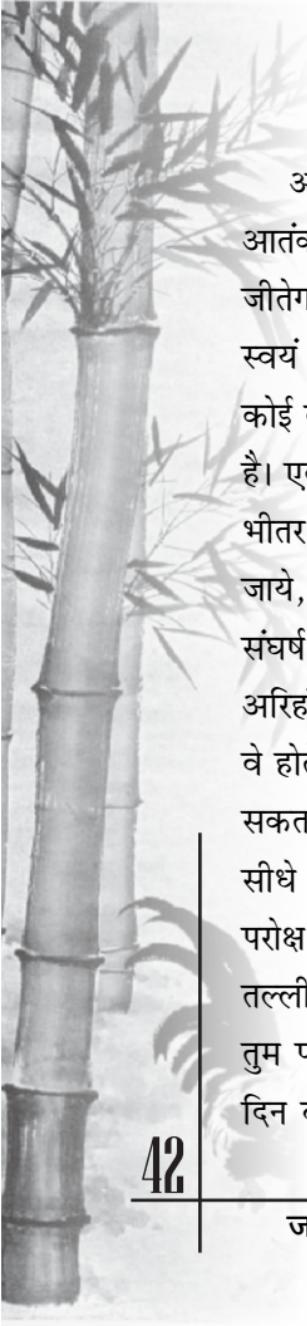
आतंकवादी से जो जीतेगा निश्चित रूप से ही वह आतंकवादी से भी बड़ा आतंकवादी होगा। नहीं तो जीतेगा कैसे?बाहर अशुभ से जो भी लड़ने चलेगा, वह स्वयं ही अशुभ हो जायेगा। उस तरीके से आज तक कोई काम न हुआ है और न भविष्य में कभी हो सकता है। एक ही उपाय है, आत्म-रूपान्तरण से गुजरो। हमारे भीतर राजनीति न रह जाये, हमारे भीतर चालाकी न रह जाये, हमारे भीतर अहंकार न रह जाये। हमारे भीतर संघर्ष की, हिंसा की, द्वेष की सारी वृत्तियाँ नष्ट हो जायें। अरिहंत बनो। अपने भीतर के शत्रुओं को नष्ट करो, और वे होते हैं समाधि में नष्ट। उनसे भी सीधे नहीं लड़ा जा सकता। ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इनसे भी सीधे लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती, वरना हार जाओगे। परोक्ष लड़ाई होगी। तुम तो परमात्मा में डूबो, तुम तो तल्लीन होओ, समाधि में डूबते-डूबते-डूबते एक दिन तुम पाओगे कि कहाँ गया क्रोध, पता ही नहीं। कितने दिन बीत गए जबसे काम-वासना ने नहीं पकड़ा। याद

भी न आयेगा, कितना समय बीत गया। लोभ कहाँ गया?मोह कहाँ गया?कुछ खबर नहीं। तुम तो परमात्मा में डूबो। अहंकार और उससे उत्पन्न ये जो षटरिपु हैं, ये सब अन्धकार के समान हैं। अन्धेरे से सीधा संघर्ष नहीं हो सकता। तुम तो दीपक जलाओ- समाधि का, तुम तो प्रकाश को फैलने दो- परमात्मा का और तुम पाओगे कि अहंकार पाया ही नहीं जाता। अंधेरा मिलता ही नहीं। दीपक लेकर ढूंढने चलोगे, अंधेरा कहीं भी नहीं मिलेगा। क्योंकि अंधेरा सिर्फ प्रकाश की अनुपस्थिति का नाम है। तुम दीपक जलाओ, 'अप्प दीपो भव' बुद्ध का अंतिम संदेश ही यही था। बुद्ध का प्रथम संदेश भी यही है, बुद्ध का मध्यम संदेश भी यही है। बहुत-बहुत रंगों-ढंगों से वही बात बार-बार कहते हैं।

तुम प्रश्न कितने ही पूछो, घूम-फिर कर जवाब एक ही होता है- जागो, ध्यान में डूबो, समाधि में तल्लीन

रहो, परमात्मा में डूबो और परमात्मा हो जाओ। अगर विश्व की भयावह स्थिति को बदलना चाहते हो तो एकमात्र उपाय यही है। तुम डूबोगे परमात्मा में, तुम्हारे भीतर प्रकाश होगा, तुम्हारा अन्धेरा मिटेगा, तो शायद और तुम्हारे आस-पास कुछ बुझे दिये जल उठेंगे। ज्योति से ज्योति जले।
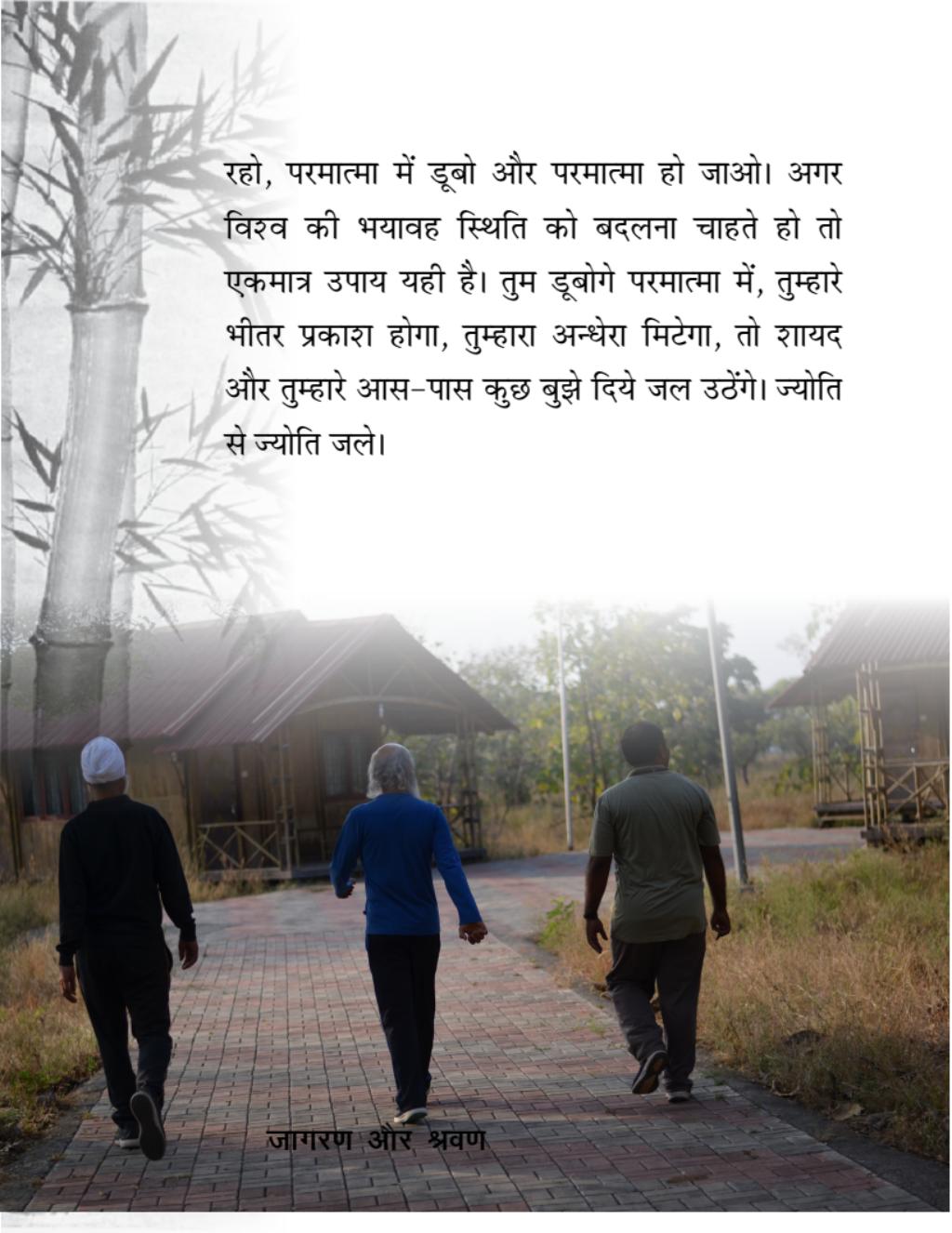
पाँचवाँ प्रश्न :- ध्यान समाधि से लेकर सहज समाधि तक की इन बारह सीढ़ियों के बारे में कुछ बताएँ।

ध्यान समाधि, पहला सोपान, समाधि से पहचान है। दूसरा सोपान सुरति समाधि, समाधि की गहराइयों में डुबकी है। तीसरा सोपान निरति समाधि, परमात्मा के प्रकाशमय रूप की खोज है। चौथी सीढ़ी अमृत समाधि, स्वयं के अमृत स्वरूप को पहचानने की कला है। पाँचवा सोपान दिव्य समाधि, परमात्मा के ऊर्जा रूप, रस रूप, सुगन्ध रूप और खुमारी रूप की पहचान है। उपनिषद के ऋषि जिसके लिए कहते हैं– 'रसोवैस:'।

कबीर कहते हैं- 'पीवत रामरस, लगी खुमारी'। मीरा कहती है- 'मनुआ राम नाम रस पीजे'। उस दिव्यता की अनुभूति उसकी अलौकिक सुगन्ध से पहचान। छठवीं है चैतन्य समाधि। सभी दिव्य अनुभवों को जानने वाले ज्ञाता चैतन्य का ज्ञान। फिर सातवीं है आनन्द समाधि, सच्चिदानन्द की पहचान है। आनन्द परमात्मा की अंतिम परिभाषा, सच्चिदानन्द की आखिरी कड़ी है। उसके बाद आती है आठवीं प्रेम समाधि, जो व्यक्ति आनन्दित हो जाता है, केवल वही व्यक्ति प्रेमपूर्ण हो सकता है। सच पूछो तो दुःखी व्यक्ति प्रेम पाने की आकांक्षा से भरा होता है। वह प्रेम कर नहीं सकता। वह प्रेम को केवल लेना जानता है, देने की क्षमता उसकी अभी नहीं। दे तो केवल वही सकता है, जिसने आनन्द को पा लिया हो। सच्चिदानन्द को जाने बगैर कोई प्रेमपूर्ण हो ही नहीं सकता। उसके पहले तो प्रेम सब धोखा है, बकवास है, सिर्फ बातचीत है, प्रेम के नाम पर दूसरे का शोषण है। केवल आनन्दित व्यक्ति जो अपने आप में आप्तकाम हो

गया है, अब जिसे कुछ भी नहीं चाहिए, जिसकी कोई कामना न रही, केवल वही व्यक्ति प्रेमपूर्ण होता है। इसलिए आनन्द समाधि के बाद प्रेम समाधि रखी है और उसके बाद नौवीं अद्वैत समाधि। प्रेम के बाद ही अद्वैत घट सकता है। 'प्रेम गली अति सांकरी, तामै दो न समाय।' जब तक परमात्मा से प्रेम न लग जाये, सारे जगत से, इस विराट अस्तित्व से प्रेम न हो जाये, तब तक अद्वैत न घट सकेगा। उसके पहले अद्वैत की बातें केवल दार्शनिक सिद्धान्त हैं। प्रेम में डूबते-डूबते-डूबते दुई मिट जाती है। साधक और परमात्मा दो अलग-अलग नहीं रह जाते, एक ही हो जाते हैं। उस एकता की अनुभूति का नाम अद्वैत है, जहाँ दो नहीं रह जाते। उस अनुभव को अलग-अलग सन्तों ने अपने-अपने ढंग से व्यक्त किया है। भक्त कहेंगे कि मैं मिट गया, केवल भगवान ही शेष रहा। ध्यानी कहेंगे कि केवल मैं ही शेष रहा, मैं ही ब्रह्म हूँ। यह मैंने जाना। मेरे अतिरिक्त और कोई ब्रह्म नहीं है- 'अहम् ब्रह्मास्मि'।
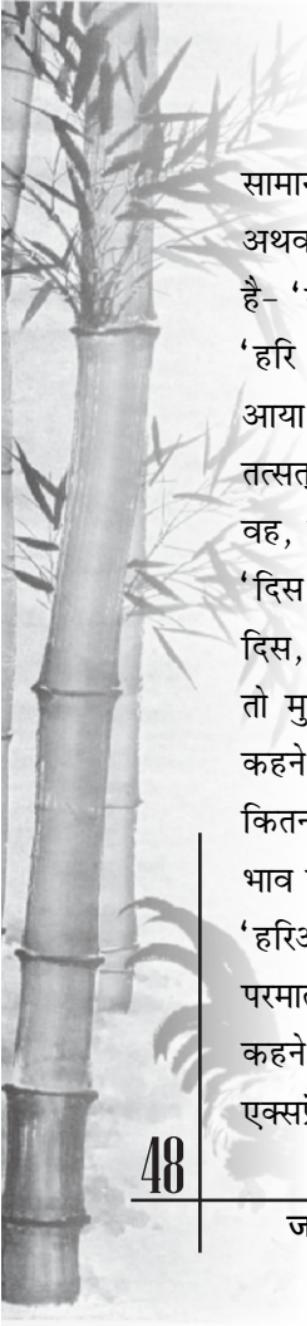
सामान्यतः ये दो प्रकार की घोषणाएँ होंगी– मैं ब्रह्म हूँ अथवा मैं हूँ ही नहीं, केवल परमात्मा है। बस तू ही तू है– 'तत्वमसि'। एक तीसरी उद्घोषणा है– न मैं, न तू, 'हरि ओम तत्सत्'। वह परम सत्य है, वह। न इसमें मैं आया, न इसमें तू आया। तत् यानि वह 'हरिओम तत्सत्'। एक चौथे प्रकार की घोषणा है– न मैं, न तू, न वह, बल्कि यह 'दिस'। ओशो कि एक किताब है– 'दिस इज इट'। दूसरी किताब का शीर्षक है– 'दिस, दिस, दिस, ए थाउजैन्ड टाइम्स दिस'। यह मुझसे पूछोगे तो मुझे यह चौथी बात ज्यादा प्रीतिकर लगती है। मैं कहने में कहीं न कहीं तू का भाव मौजूद रहता ही है। कितना ही कहो– तत्वमसि। तू में कहीं न कहीं मैं का भाव मौजूद रहता ही है, होगा बहुत सूक्ष्म। 'वह' कहो, 'हरिओम तत्सत', तो बड़ी दूर की बात लगती है कि परमात्मा कहीं दूर। नहीं; परमात्मा कहीं दूर नहीं है। वह कहने का क्या अर्थ?सबसे प्रीतिकर, सबसे प्यारा एक्सप्रैशन जो मुझे लगता है– 'यह'। ओशो कहते हैं कि

अभी और यहीं, हियर एण्ड नाओ। तो परम अवस्था की चार प्रकार से अभिव्यक्ति की जा सकती है। नौवीं अद्वैत समाधि में 'मैं कौन हूं' का उत्तर मिल जाता है। दसवीं कैवल्य 'क्या है अस्तित्व' तथा ग्यारवीं निर्वाण समाधि में 'अनस्तित्व-महाशून्य' का ज्ञान हो जाता है। तब बारहवीं सहज दशा निर्मित हो जाती है- साधो, सहज समाधि भली।

ये जो बारह सोपान हैं समाधि के, इन्हें एक विशेष क्रम से जमाया गया है, वैज्ञानिक तरीके से, क्रमिक तरीके से। जो सर्वाधिक सरल है उसे सबसे पहले रखा है। ध्यान समाधि सर्वाधिक सरल है, उसके बाद सुरति समाधि। आगे जैसे-जैसे बढ़ते है, थोड़ा-थोड़ा कठिन मामला होता जाता है। आनन्द समाधि के बाद फिर मामला बड़ा सरल हो जाता है। ध्यान समाधि, सुरति समाधि, पहले दो सोपान सरल हैं प्रेम समाधि और अद्वैत समाधि भी बड़े सरल हैं। बीच के चार सोपानों में थोड़ा-सा प्रयास जरूरी है। लेकिन जो व्यक्ति सुरति
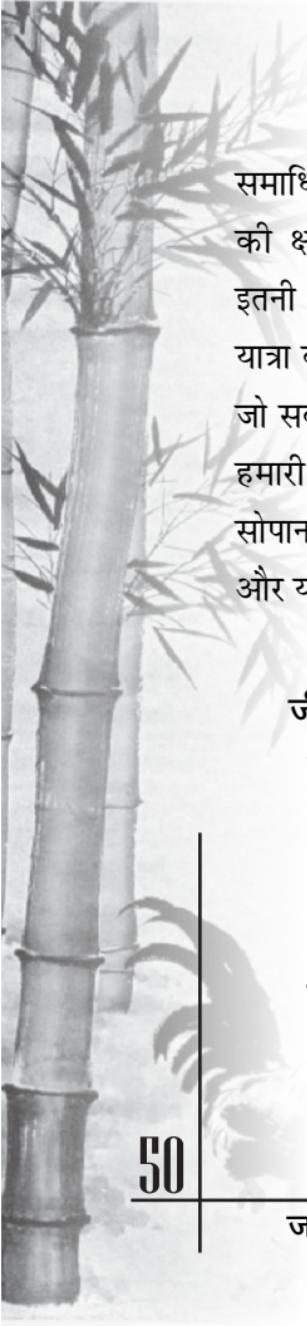
समाधि में डूब गया, वह व्यक्ति निरति समाधि में डूबने की क्षमता जुटा ही लेता है। उसकी चेतना धीरे-धीरे इतनी सूक्ष्म हो जाती है कि वह फिर नए पड़ाव तक यात्रा कर सके। उन्हें एक विशेष क्रम से जमाया गया है, जो सर्वाधिक सरल है वह सबसे पहले, ताकि धीरे-धीरे हमारी क्षमता का विकास होता चले और हम आगे के सोपान पर जाने की तैयारी कर सकें। अन्ततः तो अभी और यहीं पर पहुँच जाना है।

''न बीते कल में, न भावी कल में,
जीवन है आज, अभी और इसी पल में।''
जीवन ही है प्रभु, और न खोजो कहीं,
प्रेम है द्वार प्रभु का, खोलो अभी यहीं।
जग से न भागो रे, भोगो और जागो,
यही है तपस्या, जीवन मत त्यागो ।
होश की कला सीखो, जिन्दगी संवारो,
प्यार के रंगों से दुनिया सजा लो।
न बीते कल में, न भावी कल में,

जीवन है आज, अभी और इसी पल में।

ये समाधि की यात्रा वर्तमान के इस क्षण में गहरे से गहरे डूबने की यात्रा है। और गहरे, और गहरे, कैसे बढ़ते चलें?बुद्ध कहते थे- 'चरैवेति-चरैवेति'। चलते चलो, चलते चलो। ओशो ने एक शेर अपने प्रवचनों में कई बार कहा है-

सितारों के आगे जहाँ और भी है।
अभी इश्क के इम्तिहाँ और भी हैं।।

तो तुम जहाँ भी हो, वहीं से एक कदम और चलो, थोड़ा और, थोड़ा और, जहाँ भी हो वहीं से। साक्षीभाव साध लिया है, चलो बहुत सुन्दर हुआ। अब साक्षीभाव के आगे तल्लीनता की साधना, तथाताभाव की साधना। तथाताभाव सध गया?चलो अब श्रवण करें परमात्मा के परम संगीत का। संगीत को सुन लिया, चलो और दूसरे आयाम में प्रवेश करें- प्रभु के दर्शन का। चलते चलो, चलते चलो, जहाँ हो वहाँ से एक कदम और। और हजारों मील
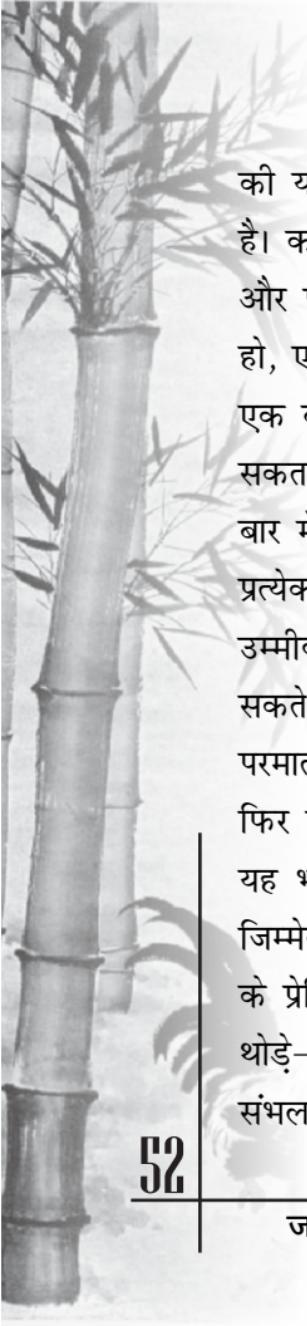
की यात्रा भी एक-एक कदम करके पूरी हो जाती है। कभी यह मत सोचना कि यात्रा बहुत लम्बी है और परमात्मा है बहुत दूर। मंजिल कितनी ही दूर हो, एक बार में तो एक ही कदम चलना होता है। एक बार में दो कदम तो कोई भी व्यक्ति नहीं चल सकता और इतनी क्षमता तो हम सब में है कि एक बार में एक कदम उठा सकें। इतनी क्षमता तो प्रत्येक व्यक्ति में है। इसलिए खूब आशा और उम्मीद से भरो। हम बस एक-एक कदम उठा सकते हैं, और एक-एक कदम चलते-चलते परमात्मा की मंजिल मिल जाती है। वह मिल जाये, फिर तरंगें फैलनी शुरू होती हैं। फिर विश्व की यह भयावह स्थिति बदल सकती है। लेकिन वह जिम्मेवारी हम सब ओशो संन्यासियों पर है। ओशो के प्रेमियों पर है। क्योंकि हमीं लोग इस दुनिया में थोड़े-से जागे हुए लोग हैं। अगर हम थोड़ा-सा संभल गए, तो हम पूरी दुनिया की दशा को पलट

सकते हैं। यह दुनिया एक स्वर्ग बन सकती है। यह दुनिया महज गम ही गम नहीं है। बस थोड़ी–सी कोशिश, एक कदम। फिर एक कदम! 'चरेवेति, चरेवेति, चरेवेति'। (नोट–यह प्रवचन 2001 में दिया गया है। तत्पश्चात् 'ऊर्जा समाधि' तथा 'परमहंस समाधि' के सोपान इस यात्रा में और जुड़ चुके हैं।)

छटवाँ और अंतिम प्रश्न :- ध्यान समाधि के प्रथम सोपान आनन्द प्रज्ञा शिविर से विदा ले रहे मित्रों को आप कुछ निर्देश देना चाहेंगे?

हां। विदाई की बेला नजदीक आ गई है; ये तीन दिन 'आनन्द प्रज्ञा शिविर' वालों के साथ गुजारकर बहुत आनन्दित हूँ। भीतर की यात्रा पर प्राथमिक कदम उठाए। ओशो की जो दो मुख्य देशनाएं हैं, ध्यान और प्रेम, उस संबंध में कल एक मित्र मुझसे पूछते थे कि गौतम बुद्ध के आष्टांगिक मार्ग में प्रेम क्यों नहीं आता?ओशो तो प्रेम को बहुत ज्यादा एम्फेसाईज करते हैं, बहुत ज्यादा जोर

देते हैं। मैंने उनसे कहा, कि सच पूछो तो आष्टांगिक मार्ग में ध्यान की तो एक ही बात है। आठ में से एक ही बात है, सम्यक् समाधि। होशपूर्ण जीवन, साक्षी जीवन, वह ध्यान का सूत्र है, बाकी की सात बातें तो प्रेम की ही हैं। हम दूसरों से कैसे रिलेट हों, दूसरों से कैसे सम्बन्धित हों?कैसे हम शीलवान हों? सम्यक् वाणी हो, सम्यक् आजीविका हो। इस सबका तो दूसरों से सम्बन्ध है, तथाता का भी दूसरों से ही अधिक सम्बन्ध है। एक्सेप्टैन्स, सम्यक् दृष्टि अगर हमारी होगी तो हम कथामुक्त होंगे। हम दूसरों के साथ, ठीक सत्य के साथ हो सकेंगे, सम्बन्धित हो सकेंगे। यदि हम स्वयं दुःखी हैं तो हम दूसरों को भी दुःख ही देंगे। सम्यक् स्मृति में हम जिएंगे तो भीतर का हिस्सा तो उसका ध्यान का हुआ लेकिन सच पूछो तो फिर हम पर वे छः भूत सवार नहीं हो सकेंगे और दूसरों के साथ हम प्रेमपूर्ण व्यवहार कर सकेंगे, क्रोध से बच सकेंगे।
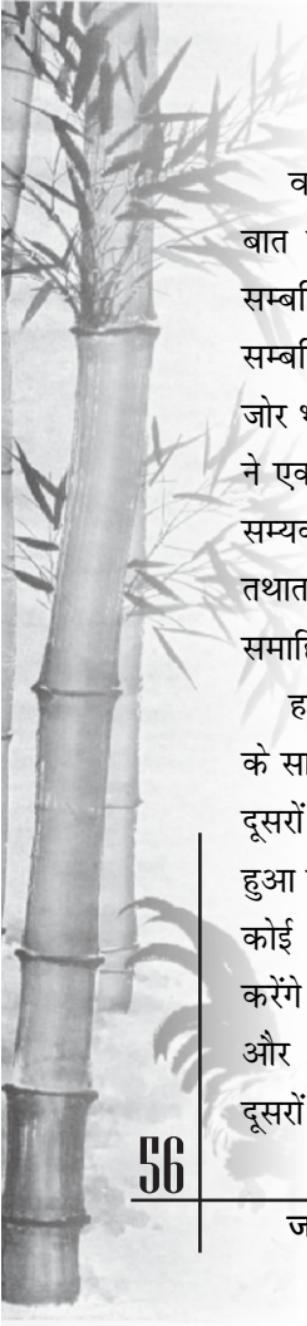
वस्तुतः देखें तो इन आठ बातों में से एक ही मूल बात है, सम्यक् समाधि, साक्षी जीवन, जो ध्यान से सम्बन्धित है। शेष सात बातें, सच पूछो तो दूसरों से सम्बन्धित हैं, जगत से सम्बन्धित हैं। तो गौतम बुद्ध का जोर भी प्रेम पर ही है। इन सात बातों को संक्षेप में ओशो ने एक शब्द में कह दिया, प्रेम। उसमें सब समाहित हैं, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् आजीविका, तथाता भाव, स्वीकार भाव, कृतज्ञता, ये सब उसमें समाहित हैं, प्रेम में, एक शब्द में।

हम जीवन के दो हिस्से कर सकते हैं। एक हम स्वयं के साथ सम्बन्धित कैसे हों, वह हुआ ध्यान। दूसरा, हम दूसरों के साथ, जगत के साथ कैसे सम्बन्धित हों, वह हुआ प्रेम। और ध्यान तो कोई कितना करेगा, दिन भर में कोई एक घण्टा, दो घण्टे, कितना करेंगे, तीन घण्टे करेंगे। तो अगर रेशियो यानि अनुपात निकालें तो प्रेम और ध्यान में तो हमारे जीवन का अधिक हिस्सा तो दूसरों से सम्बन्धित होने में जाता है। आठ घण्टे आप

अपनी दुकान में बैठते हैं, व्यापार करते हैं या नौकरी करते हैं फिर घर आ के आप सात-आठ घण्टे अपने परिवार वालों के साथ सम्बन्धित होते हैं। अपनी पत्नी से, पड़ोसी से, बच्चों से, मित्रों से, माता-पिता से। आठ घण्टे आपके नींद में जाते हैं, तो जीवन का बड़ा हिस्सा तो दूसरों के साथ सम्बन्धित होने में ही जाता है। यदि उसमें कोई उलझाव है, उसमें कोई परेशानी खड़ी कर रहे हैं, दूसरों के लिए प्रेमपूर्ण नहीं हैं, क्रोध कर रहे हैं, ईर्ष्या से भरे हुए हैं, दूसरों का स्वीकार नहीं कर रहे हैं, तो फिर हम ध्यान में भी न डूब सकेंगे।

एक बात याद रखना यदि हम प्रेमपूर्ण नहीं हो पा रहे, जगत के साथ हमारे मधुर सम्बन्ध नहीं हैं, तो हम स्वयं से भी सम्बन्धित नहीं हो सकेंगे। यह असम्भव बात है, इसलिए दोनों बातें एक साथ साधनी होंगी। और दोनों परस्पर अन्युनायाश्रित हैं, एक-दूसरे के ऊपर निर्भर हैं जितना आप ध्यान में डूब सकेंगे, साक्षी भाव में, उतने ही सुन्दर ढंग से मधुर सम्बन्ध आप बाहर बना
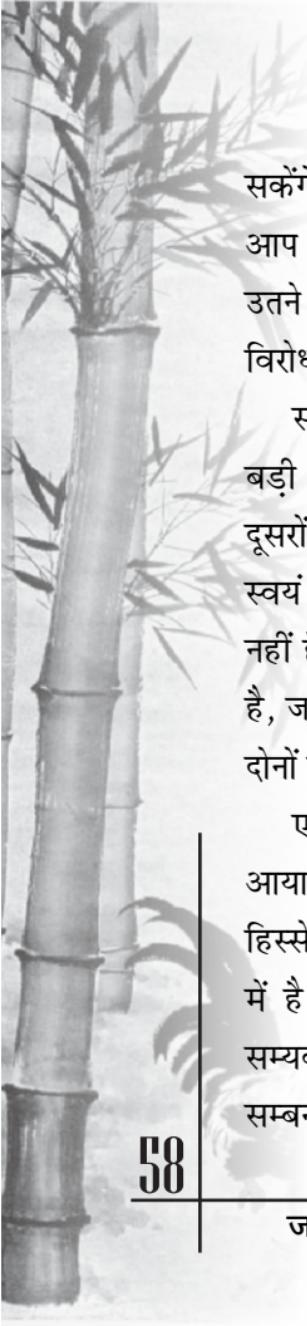
सकेंगे। इसके विपरीत भी सत्य है, जितने मधुर सम्बन्ध आप बाहर बना सकेंगे, स्वयं से भी सम्बन्धित आप उतने ही सरलता से हो सकेंगे। इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है।

सच पूछो तो प्रेम यानि दूसरे के साथ होशपूर्ण होना। बड़ी छोटी सी परिभाषा हम कर सकते हैं, प्रेम अर्थात् दूसरों के साथ सजगतापूर्ण सम्बन्ध और ध्यान यानि स्वयं के साथ प्रेमपूर्ण सम्बन्ध। दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। जब आप स्वयं को प्रेम कर रहे हैं तो वह ध्यान है, जब आप दूसरों के साथ ध्यानपूर्ण हैं तो वह प्रेम है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

एक उदाहरण से समझें। इसमें एक सम्यक् वाणी आया है, आष्टांगिक मार्ग में। अब सम्यक् वाणी के दो हिस्से और हम कर सकते हैं। भीतर है हमारा मन, बीच में है वाणी और बाहर हैं हमारे कर्म। सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म और भीतर साक्षी, इन तीनों में एक गहरा सम्बन्ध है। पहले कोई भी बात आपके भीतर उठती हैं,

वह विचार के रूप में आती है, मन के तल पर आती है। फिर वाणी में आती है, आप उसे वाणी में प्रकट कर सकते हैं, बोलते हैं और फिर कर्म का रूप लेती है, वह।

गौतम बुद्ध जो कि मध्य मार्ग के प्रवक्ता हैं, मज्झम निकाय की बात करते हैं, इसलिए सम्यक वाणी पर इतना जोर है। क्योंकि जो व्यक्ति अपनी वाणी के प्रति जागरूक हो गया, वह अपने विचारों के प्रति भी जागरूक हो जाएगा, मन के प्रति भी सजग हो जाएगा। सच पूछो तो वाणी हमारे व्यक्त विचार हैं और विचार हमारी अव्यक्त वाणी है। विचार अगर व्यक्त होंगे तो वाणी बन जाएंगे और ठोस रूप में जब आएंगे तो कर्म बन जाएंगे। सब चीजें आपस में जुड़ी हुई हैं। जो आप कर्म कर रहे हैं, वह भीतर आपके मन से जुड़ा हुआ है। यदि आप वहाँ साक्षी हो सकते हैं तो आपकी वाणी मधुर हो जाएगी, आप शीलवान ढंग से जीवन जी सकेंगे और आपके कर्म सम्यक् हो जाएंगे। इन सबमें आपसी गहरा तालमेल है, तो सच पूछो तो गौतम बुद्ध के आष्टांगिक
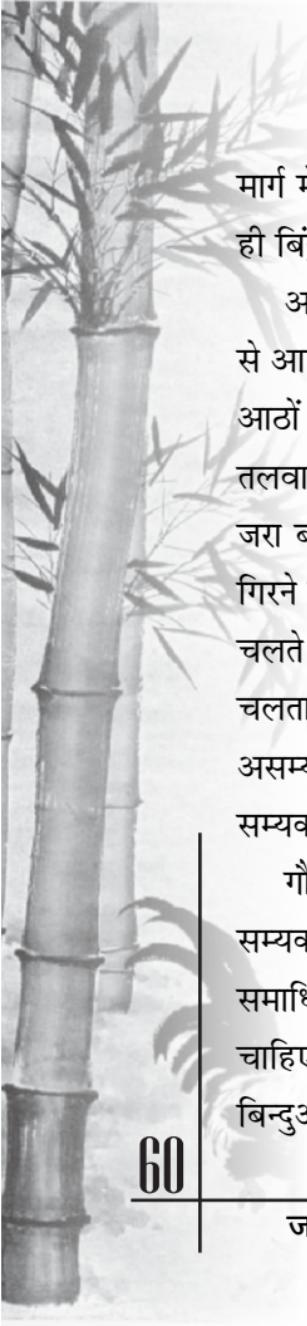
मार्ग में ध्यान का एक बिंदु है, शेष सात बिंदु तो प्रेम के ही बिंदु हैं।

आपको विदा देते समय, मैं इसी उम्मीद और आशा से आपको विदा देता हूँ कि जीवन में ध्यान और प्रेम, इन आठों हिस्सों को आप सम्भाल कर चल सकेंगे। जैसे तलवार की धार पर चलते हैं, वैसा ही यह जीवन है। जरा बाएं गिरने का डर हो तो दाएं झुक जाना और दाएं गिरने का डर हो तो बाएं झुक जाना। सर्कस में रस्सी पर चलते हुए नट को देखा है न, कैसे सम्भल-सम्भल कर चलता है। जीवन भी ऐसी ही डोर पर चलना है, जरा भी असम्यक् हुए कि गिरे। सम्यक् होना होगा, हर चीज में सम्यक् होना होगा।

गौतम बुद्ध ने तो हद कर दी, समाधि के साथ भी सम्यक् शब्द जोड़ दिया, सम्यक् समाधि। क्योंकि समाधि भी असम्यक् हो सकती हैं। अति कहीं नहीं होना चाहिए, बीच में सम्भल कर चलना हैं। इन आठों बिन्दुओं में से एक शब्द भी आपको याद रह जाए,

सम्यक्, तो पर्याप्त है। उसमें फिर सब पीछे से चला आयेगा। बस सम्यक् को याद रखें, हमेशा मध्य में हों। न इस अति पर, न उस अति पर।

एक छोटी सी कहानी मुझे याद आती है- एक किसान था, एक साधु का प्रवचन सुनने गया। साधु उसे समझा रहा था, प्रवचन दे रहा था, कुछ। उस किसान को कुछ मिसअन्डरस्टेंडिंग हुई, कुछ गलतफहमी उसे हुई। उसे लगा कि जो हम बोएंगे वैसी ही फसल काटेंगे, ऐसा साधु कह रहा था, कर्मों के सम्बन्ध में समझा रहा था। किसान नासमझ था, उसने सोचा कि अरे मैं भी कैसा नासमझ, जैसा बोएंगे, वैसी ही फसल काटेंगे, तो मुझे तो अपने जानवरों के लिए, गाय, बैल के लिए भूसे की जरूरत है, तो जा के भूसा बोता हूँ क्योंकि जैसी फसल बोउंगा वैसी ही फसल काटूंगा। उसने अपने खेत में जाकर भूसा बो दिया। इन्तजार करता रहा, पानी दिया, खाद दिया। बदबू आने लगी, वह भूसा भी सड़ गया, ऊगा तो कुछ भी नहीं, फसल तो कुछ भी नहीं आई। वह
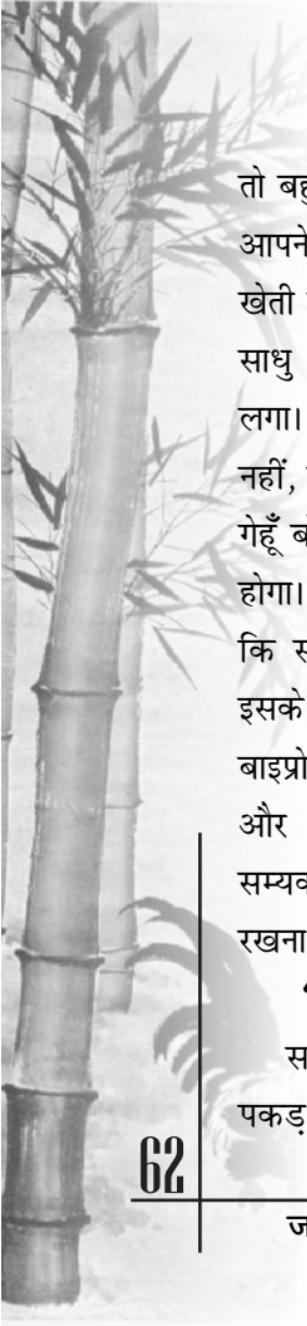
तो बहुत नाराज हुआ, वह साधु के पास गया। कि जैसा आपने कहा था, मैंने वैसा ही किया, लेकिन भूसा की खेती मैंने करनी चाही थी, भूसा तो पैदा नहीं हुआ। वह साधु उसकी नासमझी पर, उसकी मूढ़ता पर, हँसने लगा। ऐसी ही मूढ़ता हम सब करते हैं, करीब-करीब। नहीं, गेहूँ बोते हैं तो भूसा आता है, भूसा बाइप्रोडक्ट है, गेहूँ बोना होता है। ध्यान और प्रेम बीज हैं, इनको बोना होगा। और अगर एक शब्द याद रखना हो तो, मैं कहूँगा कि सम्यकत्व। बस, इतना ही याद रखना सम्यकत्व। इसके बीज बोना, और सारी फसल आती रहेगी, उसके बाइप्रोडक्ट सब आते रहेंगे; सम्यक् स्मृति, सम्यक् दृष्टि और सम्यक् कर्म, सम्यक् वाणी, सम्यक् समाधि, सम्यक् व्यायाम। सब आते रहेंगे। एक बीज को याद रखना सम्यकत्व।

'एक साधे सब सधे, सब साधे, सब जाए।'

सब साधने की कोशिश करने के लिए एक सूत्र को पकड़ लेना। इस एक को साध लेना और सब अपने आप

सध जाएगा। इन शब्दों के साथ आपको बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। आप आए, यह कार्यक्रम आपने अटेण्ड किया और यहाँ से कुछ बीज आप लेकर जा रहे हैं। जो आपके जीवन में आगे चलकर अंकुरित होंगे, पल्लिवत-पुष्पित होंगे और इन फूलों से आपका जीवन सुवासित हो उठेगा, सुगंध से भर उठेगा। इन्हीं मंगलकामनाओं के संग-

धन्यवाद।